Peer Reviewed Refereed Journal ISSN : 2278 – 5639
Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ)
{Bi-Monthly} Volume – XII Issue – V September - October 2023

गीता में योग

ईशिता सिंह
संकाय सदस्य,
लीगल स्टडीज एंड रिसर्च बरकतउल्ला विश्वविद्यालय,
भोपाल, म. प्र.

डॉ. रानी दुबे
सहायक आचार्य,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर , म. प्र.

परिचय

भारतीय वाड्मय में गीता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है | गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण योग को विभिन्न अर्थों में प्रयोग करते है, अनुकूलता – प्रतिकूलता, सिद्धि –असिद्धि, सफलता –विफलता, जय –पराजय इन समस्त भावो में आत्मरथ रहते हुए सम रहने को योग कहते हैं | असंग भाव से दृष्टा बनकर अंतर की दिव्य प्रेरणा से प्रेरित होकर कुशलतापूर्वक कर्म करना गीता में योग ही माना गया है |भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को सीधे ही योग की पूर्णता या सिद्धि सिखाते है, यह निश्चय ही उल्लेखनीय है की योग की पूर्णता को युद्ध क्षेत्र के मध्य सिखाया गया | योद्धा अर्जुन को यह तब सिखाई गई जब वह भ्रात्रिघातक युद्ध में भिड़ने ही वाला था | भावुकता में आकर अर्जुन सोच रहा था " मैं अपने ही सम्बन्धियों से क्यों लड़ूँ " युद्ध के प्रति वह अनिच्छा अर्जुन के मोह के कारण थी,और उस मोह को दूर करने के लिए ही श्री कृष्ण ने उससे भागवद – गीता कही | कोई केवल कल्पना ही कर सकता है कि भगवद्गीता कितने कम समय में कही गई होगी | दोनों ओर के सभी योद्धा लड़ने को तैयार थे,अतः वास्तव में बहुत ही कम समय था – अधिक से अधिक एक घंटा| इस एक घंटे में ही सम्पूर्ण भागवद-गीता की विवेचना हो गई और श्रीकृष्ण ने अपने मित्र अर्जुन को सभी योग विधिया की पूर्णता बता दी | इस महान प्रवचन के बाद अर्जुन ने अपनी समस्त आशंकाए छोड़ दी और लड़ा |

Global Online Electronic International Interdicipilinary Research Journal's licensed Based on a work at http://www.goeiirj.com

फिर भी वार्तालाप के मध्य जब अर्जुन ने अष्टांग योग का विवरण सुना की कैसे आसन में बैठे, कैसे शरीर को सीधा रखें, कैसे आँखों को आधा बंद रखें, कैसे बिना ध्यान हटाये नाक के अग्र भाग को देखे और यह सब एकांत स्थान में अकेले करें तो उसने उत्तर दिया " हे मधूसुदन आपने जो योग की विधि सारांश में बतायी है वह मुझे अव्यावहारिक तथा अस्थायी लगती है | क्योंकि मन चंचल और अस्थिर है |

यह महत्वपूर्ण है कि कृष्ण से बात करते हुए अर्जुन ने उन्हें मधूसुदन नाम से संबोधित किया जो दर्शाता है कि भगवान मधु राक्षस को मारने वाले है |तो अर्जुन उन्हें मधूसुदन नाम से क्यों संबोधित करता है इसका कारण यह है कि अर्जुन ने अपने मन को एक बड़ा राक्षस माना जैसा कि मधु राक्षस था |यदि कृष्ण के लिए मन नामक राक्षस को मारना संभव हो तो अर्जुन योग की पूर्णता पा लेगा |अर्जुन कह रहा है " मेरा मन तो उस मधु राक्षस से भी अधिक बलवान है कृपया करके यदि आप

उसे मार दे तो मेरे लिए यह योग अपनाना संभव है, मन चंचल ,प्रमाती , बलवान और दृढ है,हे कृष्ण इसको वश में करना आंधी को वश में करने से भी अधिक कठिन है |"(भ.गी. 6.34)

योग विधि का सारांश चंचल मन को संयम में रखना है अष्टांग योग में मन को परमात्मा में केन्द्रित करके वश में किया जाता है यही योग का सम्पूर्ण उद्देश्य है| भगवद गीता में कृष्ण कहते है कि असली योगी वही है जिसने मेरे प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया हो कृष्ण घोषित करते है कि सन्यास तथा योग में कोई अंतर नही, " हे पांडूपुत्र जिसे सन्यास कहते है वही योग अर्थात परब्रम्ह से युक्त होना है | क्योंकि इन्द्रिय तृप्ति की इच्छा को त्यागे बिना कोई कभी योगी नहीं हो सकता | (भ.गी.6.2)

भगवत गीता में तीन मुख्य प्रकार के योगो का वर्णन हुआ है :- कर्म योग , ज्ञान योग तथा भक्ति योग |

योग की पद्धतियों को एक सीढ़ी के अनुरूप मन जा सकता है | कोई पहली सीढ़ी पर हो सकता है तो कोई मध्य की सीढ़ी पर अथवा सबसे ऊँची सीढ़ी पर हो सकता है जब कोई किन्ही विशिष्ट स्टारों पर पहुच जाता है तो उसे कर्मयोगी ज्ञानयोगी इत्यादि कहा जाता है | प्रत्येक स्थिति में भगवत सेवा तो रहती तो है भिन्नता केवल प्रगति की स्तर में होती है अतः श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि उसे समझना चाहिए कि सन्यास तथा योग एक ही है क्योंकि काम तथा भोग की इच्छा से मुक्त हुए बिना कोई न तो योगी बन सकता है और न ही सन्यासी | योग पद्धति की सीढ़ीयो पर पहला कदम रखने वालों के लिए कर्म करना अनिवार्य है | किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि वह योग का प्रारंभ करने जा रहा है | अतः उसे कर्म करना बंद कर देना चाहिए | भगवद गीता में कृष्ण अर्जुन को योगी बनने को कहते है किन्तु युद्ध न करने को कभी नहीं कहते | यह बिल्कुल विरोधी बात है निश्चय ही कोई यह पूछ सकता है कि व्यक्ति किस प्रकार योगी होने के साथ – ही साथ एक योद्धा भी बन सकता है ? योगाभ्यास के प्रति हमारी धारणा है – टांगो को मोड़कर तथा अधखुली आँखों से नाक के अग्र भाग पर तकते हुए आसन में बैठ जाना एवं इस प्रकार **एकांत स्थान पर ध्यान लगाना | अतः यह कैसे हो सकता है** कि कृष्ण अर्जुन से योगी बनने तथा साथ ही साथ एक भयंकर युद्ध में भाग लेने को भी कह रहे है |**यही भगवत गीता का रहस्य है: व्यक्ति योद्धा भी बना सकता है तथा साथ ही साथ उच्चतम योगी और उच्चतम सन्यासी भी ऐसा कैसे संभव है?** कृष्ण भावना अमृत में व्यक्ति को केवल कृष्ण के लिए लड़ना चाहिए ,कृष्ण के लिए कार्य करना चाहिए, कृष्ण के लिए खाना चाहिए तथा समस्त क्रियाओं को कृष्ण को अर्पित कर देना चाहिए इस प्रकार व्यक्ति उच्चतम योगी एवं उच्चतम सन्यासी बन सकता है |यही रहस्य है भगवत गीता के छठे अध्याय में श्री कृष्ण अर्जुन को ध्यान योग करना सिखाते हैं किंतु अर्जुन से अत्यधिक कठिन कहकर अस्वीकार कर देता है तो अर्जुन को महान योगी कैसे माना जा सकता है तथापि उन्होंने अर्जुन को सर्वोच्च योगी घोषित किया' **तुम सदैव मेरा चिंतन करते हो|' कृष्ण का चिंतन सारी योग पद्धतियों का सार है**|चाहे वह हट कर्म ज्ञान भक्ति या योग यज्ञ तथा दान के कोई अन्य पद्धतियों हो आत्मज्ञान हेतु समस्त प्रस्तावित क्रियाओं का अंत कृष्ण भावना या कृष्ण के सतत चिंतन में ही होता है| योग पद्धति की संपूर्ण विधि स्वयं को शुद्ध करने की है और वह शुद्धता क्या है अपने वास्तविक परिचय का ज्ञान होने पर शुद्धता स्वयं आती है|(मैं शूद्ध आत्मा हूं, मैं यह पदार्थ नहीं हूं) समझना ही शुद्धता है भौतिक स्पर्श के कारण हम स्वयं को पदार्थ समझते हैं तथा हम

सोचते हैं मैं यह शरीर हूं परंतु यथार्थ योग करने हेतु अपने स्वरूपानुबन्धी ही स्थिति को पदार्थ से भिन्न समझना चाहिए |एकांत में रहने तथा ध्यान योग्य करने का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है| गीता में इस बात पर बल दिया गया है |स्वयं को जागृत रखने हेतु कृष्ण परामर्श देते हैं कि व्यक्ति को नाक के अग्रभाग पर दृष्टि रखनी चाहिए साथ ही व्यक्ति को सदैव शांत रहना चाहिए यदि मन उत्तेजित है अथवा यदि उसमें अत्यधिक क्रिया चल रही है तो व्यक्ति ध्यान करने में असमर्थ रहेगा |ध्यान योग में व्यक्ति को ऐसे भी रहित होना चाहिए आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने पर भय का कोई प्रश्न नहीं रहता और ना ही इस प्रकार से ध्यान करते समय कोई इच्छा रहनी चाहिए| इच्छा रहित होने तथा इस पद्धति को समुचित प्रकार से करने पर मन व्यक्ति के वश में हो सकता है| ध्यान के लिए समस्त योग्यताओं को प्राप्त कर लेने के क्रिया चल रही है तो व्यक्ति ध्यान करने में असमर्थ रहेगा |ध्यान योग में व्यक्ति को भय से भी रहित होना चाहिए आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने पर भय का कोई प्रश्न नहीं रहता और ना ही इस प्रकार से ध्यान करते समय कोई इच्छा रहनी चाहिए| इच्छा रहित होने तथा इस पद्धति को समुचित प्रकार से करने पर मन व्यक्ति के वश में हो सकता है| ध्यान के लिए समस्त योग्यताओं को प्राप्त कर लेने की क्रिया चल रही है तो व्यक्ति ध्यान करने में असमर्थ रहेगा |ध्यान योग में व्यक्ति को भय से भी रहित होना चाहिए आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने पर भय का कोई प्रश्न नहीं रहता और ना ही इस प्रकार से ध्यान करते समय कोई इच्छा रहनी चाहिए| इच्छा रहित होने तथा इस पद्धति को समुचित प्रकार से करने पर मन व्यक्ति के वश में हो सकता है| ध्यान के लिए समस्त योग्यताओं को प्राप्त कर लेने के उपरांत उसे अपना संपूर्ण ध्यान कृष्ण या विष्णु पर स्थानांतरित कर देना चाहिए| अतः कृष्ण कहते हैं कि ध्यान योग पद्धति में संलग्न व्यक्ति (सदैव मेरा चिंतन करता है)गीता के अध्याय 6.1.5 में उल्लेख है कि(इस प्रकार शरीर मन तथा कर्म निरंतर संयम का अभ्यास करते हुए संयमित मन वाले योगी को इस भौतिक अस्तित्व की समाप्ति पर भगवत धाम की प्राप्ति होती है| ध्यान योग पद्धति पर अपने प्रवचन में कृष्ण घोषणा करते हैं कि अधिक खाने वाले तथा कम खाने वाले द्वारा योग नहीं किया जा सकता|स्वयं को भूखा रखने वाला ठीक प्रकार से योग नहीं कर सकता ना ही वह जो आवश्यकता से अधिक खाता हो खाने की विधि संतुलित होनी चाहिए केवल शरीर तथा आत्मा को साथ रखने में पर्याप्त, उसे जीभ के स्वाद हेतु नहीं होना चाहिए ना ही ध्यान योग पद्धति तक की जा सकती है जब व्यक्ति बहुत अधिक सोता हो अथवा अपर्याप्त सोता हो |गीता में कृष्ण देते हैं कि निद्रा में अधिक स्वप्न देखने वाला समुचित योग नहीं कर सकता व्यक्ति को प्रतिदिन 6 घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए और ना ही अनिद्रा का रोगी जो रात को ही सो न पाता हो सफलतापूर्वक योग कर सकता है अतः श्री कृष्ण शारीर के संयम हेतु अनेक आवश्यकताए बताते है|कृष्ण संकेत देते हैं कि व्यक्ति योग में तभी स्थितहोता है जब उसकी चेतना पूरी तरह उसके वश में हो "भगवत गीता 6.18 जब योगी योगाभ्यास द्वारा अपने मानसिक कार्यकलापों को वश में कर लेता है और आध्यात्म में स्थित हो जाता है अर्थात समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है तब वह योग में सुस्थिर कहा जाता है| योग को प्राप्त कर लेने वाला अपने मन के निर्देशों पर निर्भर नहीं होता बल्कि मन उसके नियंत्रण में होता है न ही मन को निकाला या मारा जाता है |इच्छा शून्य हो जाना संभव नहीं है शुद्धि की विधि से इंद्रिय तृप्ति की इच्छा को पराभूत करना चाहिए हम इच्छा को स्थानांतरित करना है |इच्छा को मारने का कोई प्रश्न नहीं क्योंकि इच्छा जो आत्मा की चिर संगिनी है| यह भौतिक शरीर

अविद्या का पिंड है तथा इंद्रियां मृत्यु तक ले जाने वाले मार्गों की जाल है |जहां तक गीता का **संबंध केवल गहरी सांसे लेना तथा कुछ कसरतें करना योग नहीं है |चेतना के संपूर्ण शुद्धि की □वश्यकता होती है**| योग करने में यह बहुत महत्वपूर्ण है कि मन उत्तेजित न हो जिस प्रकार वायु रहित स्थान में दीपक हिलता डोलता नहीं उसी तरह जिस योगी का मन वर्ष में होता है वह आत्म तत्व के ध्यान में सदैव स्तर रहता है| (6.1 9 भगवत गीता)

योग का कोई एक रूप कठिन हो सकता है तथा दूसरा सरल हो सकता है परंतु सब परिस्थितियों में व्यक्ति अपना अस्तित्व शुद्ध करके कृष्णभावना भक्ति आनंद की धारणा में पहुंचना चाहिए तब व्यक्ति सुखी हो सकता हैं। "जब कोई पुरुष समस्त भौतिक इच्छाओं का त्याग करके ना तो इन्द्रिय तृप्ति के लिए कार्य करता है और न सकाम कर्मों में प्रवृत्ति होता है तो वह योगारूढ़ कहलाता हैं। मनुष्य को चाहिए कि अपने मन की सहायता से अपना उद्धार करें और अपने को नीचा न गिरने दे। यह मन जीव का मित्र भी है शत्रु भी।" (भगवद गीता 6.5)

मैं अपना ही मित्र और अपना ही शत्रु बन सकता हूं ना तो कोई हमारा शत्रु बनकर जन्म लेता है और ना ही हमारा मित्र बनकर यह संबंध परस्पर व्यवहार से ही निर्धारित होती है। जैसे हम सामान्य व्यापार में अन्यों के साथ व्यवहार करते हैं वैसे ही व्यक्ति के स्वयं से भी व्यवहार होते हैं। मित्र के रूप में मैं अपनी स्थिति को एक जीवात्मा के रूप में समझ सकता हूं और यह देखते हुए कि किसी न किसी कारण वश में भौतिक प्रकृति के स्पर्श में आ गया हूं भौतिक बंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करने हेतु इस प्रकार क्रिया कर सकता हूं कि स्वयं को निर्बंध कर सकूं इस स्थिति में मैं अपना मित्र हूं परंतु इस अवसर को प्राप्त करके भी यदि मैं इसे ग्रहण ना करूं तो मुझे स्वयं को अपना घोर शत्रु समझना चाहिए।"जिसमें मन को जीत लिया है उसके लिए मन सर्वश्रेष्ठ मित्र है किंतु जो ऐसा नहीं कर पाया उसके लिए मन सबसे बड़ा शत्रु बना रहेगा।"(भगवद गीता 6.6)

स्वयं अपना मित्र बन पाना किस प्रकार संभव है? यह यहां वर्णित है आत्मा का अर्थ है मन ,शरीर तथा आत्मा। जब हम आत्मा की बात करते हैं तो जब तक हम देहात में बुद्धि में होते हैं हम शरीर की और लक्ष्य करते हैं परंतु जब हम देहात में बुद्धि का अतिक्रमण कर जाते हैं तथा मानसिक स्तर तक उठ जाते हैं तो आत्मा का तात्पर्य मन होता है किंतु जब वास्तव मैं वास्तविक आध्यात्मिक स्तर पर स्थित हो जाते हैं तो आत्मा का तात्पर्य आत्मा से ही होता है। वास्तव में वास्तव में हम शुद्ध आत्मा हैं। भगवत गीता के प्रस्तुत श्लोक में आत्मा अर्थ मन है यदि योग के माध्यम से मन प्रशिक्षित हो पाए तो मन हमारा मित्र है किंतु यदि मन को अप्रशिक्षित ही छोड़ दिया जाए तो सफल जीवन जीने की कोई संभावना नहीं है जिसे आध्यात्मिक जीवन का कोई ज्ञान नहीं उसके लिए मन उसका शत्रु है। यदि कोई केवल स्वयं को शरीर समझे तो मन केवल उसके लाभ हेतु कार्य नहीं करेगा। वह केवल स्थूल शरीर की सेवा करने में क्रियान्वित रहेगा तथा जीवात्मा को और भी अधिक बद्ध करेगा एवं उसे भौतिक प्रकृति में हंसा देगा किंतु यदि कोई स्वयं को शरीर से भिन्न जीवात्मा समझे तो मन मुक्ति कारक तत्व बन सकता है मन के पास अपने आप में करने को कुछ भी नहीं है वह तो प्रशिक्षित होने की प्रतीक्षा करता रहता है और इसे संगति द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्रशिक्षण दिया जा सकता है। अतः यदि मन को मित्र के रूप में क्रिया करनी हो तो उत्तम संगत होनी चाहिए। स्पष्टः यदि कोई बुद्धिमान है तो वह उन लोगों की की संगति करेगा जो योग के विभिन्न रूपों में

से किसी एक के माध्यम से स्वयं को आत्मसाक्षात्कार के स्तर तक झूठे हो परिणाम यह होगा कि जो आत्मज्ञानी है यह भौतिक संगति के प्रति व्यक्ति आसक्ति को काट देंगे यही अच्छी संगति का महान लाभ है। गीता में कृष्ण अर्जुन के भौतिक मोह को काटने हेतु उपदेश देते हैं मन की आसक्तियों हेतु काटने हेतु तीक्ष्ण शब्द की आवश्यकता होती हैं उदाहरण स्वरुप गीता के प्रारंभ में कृष्ण तीक्ष्ण शब्दों में अर्जुन से कहते हैं कि यद्यपि वह एक पंडित की तरह बोल रहा है , तथापि वास्तव में वह निपट मूर्ख है यदि वास्तव में इस भौतिक जगत से विरक्ति चाहते है तो हमे गुरु के ऐसे तीक्ष्ण शब्दों का स्वीकार करने हेतु तैयार रहना चाहिए। चूंकि मन अन्य इंद्रियों का निर्देशन करता है इसलिए मन को मित्र बनाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है " जिसने मन को जीत लिया है उसने पहले ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया है। क्योंकि उसने शांति प्राप्त कर ली है ऐसे पुरुष के लिए सुख - दुख, शीत - ताप एवं मान- अपमान एक से है।(भगवद गीता 6.7)

योग पद्धति में मन को वश में करके उसे हृदय में बैठे परमात्मा पर केंद्रित किया जाता हैं गीता में भी यही कहा गया हैं कि जिसने मन को जीत लिया है तथा अस्थायी वस्तुओं में आसक्ति छोड़ दी है वह परमात्मा के ध्यान में मग्न हो सकता हैं ऐसा मग्न होने वाला समस्त द्वंदो तथा मिथ्या उपाधियों से मुक्त हो जाता है। द्वंद अनेक है जिन्हें हमें सहना चहिए परंतु यदि मन कृष्ण भावना में स्थित हो तो ये द्वंद महत्वहीन होने लगेंगे। ऐसे द्वंदों को कोई कैसे सहन करें? भगवद गीता में गीता के 6.8 श्लोक में कहा गया है " वह व्यक्ति आत्म साक्षात्कार को प्राप्त तथा योगी कहलाता हैं जो अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया संतुष्ट रहता है ऐसा व्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त तथा जितेंद्रिय कहलाता है वह सभी वस्तुओं को चाहे वह कंकड़ हो, पत्थर हो या कि सोना एक समान देखता है।"

ज्ञान का अर्थ है सैद्धांतिक ज्ञान और विज्ञान का तात्पर्य है व्यवहारिक ज्ञान। योग में व्यक्ति को सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यावहारिक ज्ञान भी होना चाहिए केवल यह समझना कि " मैं यह शरीर नहीं हु और विषयी जीवन होते हुए वेदांत दर्शन पर गंभीरता पूर्वक चर्चा करते हैं वह वास्तव में व्यवहारिक रूप से सही नहीं है परंतु जो सही में समझे की मैं यह शरीर नहीं हूं वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को न्यूनतम कर लेगा। जब व्यक्ति आत्मज्ञान के व्यवहारिक स्तर पर स्थित हो तो यह समझना चाहिए कि वह योग में स्थित है। "जब मनुष्य निष्कपट, हितैशियों,प्रिय मित्रों , तटस्थों , मध्यस्थों, इष्यालूओं , शत्रुओं, तथा मित्रों पुण्य आत्माओं एवम् पापियों को समान भाव से देखता है तो वह और भी विशिष्ट माना जाता है। (भगवत गीता 6.9)

गीता में यहीं कहा गया है जो वास्तव में ज्ञानी है तथा जिसने वास्तव में योग को प्राप्त किया है वह इन शारीरिक भेदों को नहीं देखता ऐसा नहीं है कि गीता ध्यान योग पद्धति को अस्वीकार करती हो वह इसे प्रमाणिक विधि के रूप में स्वीकार करती हैं। अर्जुन ने छठे अध्याय में कृष्ण से पूछा " हे कृष्ण उस असफल योगी की गति क्या है जो प्रारंभ में श्रद्धापूर्वक आत्मसाक्षात्कार की विधि ग्रहण करता है किंतु बाद में भौतिकता के कारण उससे विचलित हो जाता है और योग सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता । योगी से अर्जुन का तात्पर्य हठयोगी, ज्ञामयोगी तथा भक्ति योगी से है यह नहीं की ध्यान ही योग का एक मात्र रूप है। कृष्ण ने कहा हे पार्थ पुत्र कल्याणकारियों में निरंतर योगी का न तो इस लोक में न परलोक में ही विनाश होता है। हे मित्र भलाई करने वाला कभी बुराई से पराजित नहीं होता। (भगवत गीता 6.40)

यहां कृष्ण संकेत करते हैं कि योग की पूर्णता का प्रयास करना ही अत्यंत शुभ है जब कोई इतने शुभ कार्य हेतु प्रयासरत हो तो वह कभी भी पतित नहीं होता यदि कोई गंभीरता पूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान का 1 प्रतिशत भी पालन करता है तो वह भौतिक भवर में कभी नहीं गिरेगा। यह उसके निष्ठावान प्रयास के कारण है यह सदैव समझते रहना चाहिए कि हम बहुत निर्बल है तथा माया बहुत प्रबल है आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करना कमोवेश माया के विरुद्ध युद्ध छेड़ना है।माया जीव को अधिक से अधिक फसाने का प्रयत्न करती हैं और जीव ज्ञान की आध्यात्मिक प्रगति द्वारा उसके चंगुल से निकलने का प्रयास करता है भौतिक शक्ति या माया अधिक प्रलोभन देती हैं।" असफल योगी पवित्र आत्माओं के लोकों में अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद या तो सदाचारी पुरुषों के परिवार में या कि धनवानों के कुल में जन्म लेता है अथवा वह ऐसे योगियों के कुल में जन्म लेता है जो अति बुद्धिमान है निश्चय ही इस संसार में ऐसा जन्म दुर्लभ हैं। (भगवत गीता 6.41-6.42)

गीता में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन में अपना कोई कर्तव्य होता है भले ही वह किसी भी स्थिति या किसी भी समाज में क्यों न हो। फिर वह अपने स्व धर्म को छोड़ दे तथा किसी न किसी प्रकार भावना वर्ष अथवा संघ वर्ष अथवा पागलपन में अथवा जैसे भी हो कृष्ण का आश्रय ले और यदि अपनी और परिपक्वता के कारण वह भक्ति मार्ग से गिर जाए तो भी उसके लिए कोई हानि नहीं है। दूसरी ओर यदि व्यक्ति अपने कर्तव्यों का भली-भांति पालन करता रहे किंतु भगवान की ओर ना आए तो उसे क्या लाभ होगा उसका जीवन निश्चय ही व्यर्थ हैपरंतु कृष्ण तक आने वाले व्यक्ति योग पद से नीचे गिर कर भी अच्छी स्थिति में होता है। कृष्ण आगे कहते हैं कि जन्म लेने हेतु समस्त अच्छे परिवारों में सर्वश्रेष्ठ परिवार योगियों का होता है क्योंकि उसके लिए अपने भ्रष्ट आध्यात्मिक जीवन को सुधारने की कहीं अधिक संभावना है। ऐसा जन्म पाकर वह अपनी पूर्व जन्म की अपनी दैवी चेतना को पुनः प्राप्त करता है और पूर्ण सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य आगे उन्नति करने का प्रयास करता है।
(भगवत गीता 6.43)

योग्य भक्ति करने वाले परिवार में जन्म लेकर व्यक्ति को अपने पूर्व जन्म में संपादित आध्यात्मिक गतिविधियों का स्मरण होता रहता है अपने पूर्व जन्म की दैवी चेतना के कारण वह न चाहते हुए भी सहयोग के नियमों की ओर आकर्षित होता है।(भगवत गीता 6.44)

भगवत गीता में योग पद्धति मुख्य रूप से शुद्धि हेतु है उद्देश्य तीन प्रकार के है : इंद्रियों का संयम ,क्रियाओं का शुद्धीकरण तथा कृष्ण से परस्पर संबंध जोड़ना । परम सत्य को तीन स्तरों में जाना जाता है: निर्विशेष ब्रह्म , अंतर्यामी परमात्मा और अनंत परम पुरषोत्तम भगवान । परम पुरुषोत्तम भगवान के रूप में श्री कृष्ण सारे ऐश्वर्य से पूर्ण है किंतु साथ ही सातवें त्याग से पूर्व है और इस जगत में देखा जाता है अधिक ईश्वर प्राप्त व्यक्ति उसे त्यागने को अधिक इच्छुक नहीं होता किंतु कृष्ण ऐसे नहीं है। वे कुछ भी त्याग सकते हैं तथा पूर्ण रह सकते हैं भगवत गीता के छठे अध्याय में योग पद्धति पर अपने प्रवचन में श्री कृष्ण कहते हैं "जो पुरुष अपने कर्म फल के प्रति अनासक्त है और जो अपने कर्तव्य का पालन करता है वही सन्यासी और असली योगी है।"वह नहीं, जो न तो अग्नि जलाता है और न कर्म करता है प्रत्येक व्यक्ति कार्य कर रहा

है तथा किसी न किसी परिणाम की आशा कर रहा है किंतु कृष्ण यहां इंगित करते हैं कि केवल कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति कार्य कर सकता है ,बिना अपनी क्रियाओं के परिणामों की आशा लिए। यदि व्यक्ति इस प्रकार कार्य करें तो वह इस प्रकार वास्तव में सन्यासी है। फिर भी कृष्ण संकेत करते हैं कि सन्यासी के लिए त्याग ही सब कुछ नहीं है साथ ही कुछ कर्तव्य भी होना चाहिए जो फिर उस सन्यासी का क्या कर्तव्य है जिसने परिवार का त्याग कर दिया हो तथा जिसके भौतिक दायित्व अब नहीं हो उसका कर्तव्य सबसे अधिक दायित्व पूर्ण होता है वह कृष्ण के लिए कार्य करता है जीवन की सभी अवस्थाओं में सभी के लिए यही वास्तविक कर्तव्य है अतः वह भ्रम के स्थान पर यथार्थ की सेवा करते हुए अधिक सुव्यवस्थित रहता है। जब कोई इस बारे में सचेत होता है तो वह यथार्थ ज्ञान के अस्तर को पाता है सन्यासी से हमारा अभिप्राय उससे है जो इस स्तर पर आ गया हो। सन्यास का तात्पर्य दिव्य ज्ञान का अनुभव है यह कोई सामाजिक उपाधि नहीं है। आगे कृष्ण कहते हैं कि अनेक जन्मों के बाद ,जब कोई वास्तविक ज्ञान के अवसर पर आता है तो वह (मुझे समर्पण कर देता है)। समर्पण तो दिव्य प्रेम का परिणाम है जहां बाध्यता है और जहां स्वतंत्रता नहीं है वह प्रेम नहीं हो सकता है जब मैं बालक से प्रेम करते हैं तो उसे ऐसा करने को बाद नहीं किया जाता और ना ही किसी वेतन या पुरस्कार हेतु प्रेम करती है। जब हम इस समझ के स्तर पर आते हैं तो हम जान में पूर्ण होते हैं।

जब व्यक्ति अनंत समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है तो वह योग पद्धति की परम सिद्धि- कृष्ण भावना- का लाप करता है "अनेक जन्म जन्मांतर के बाद जिसे समुचित ज्ञान होता है वह मुझको समस्त कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है"(भगवत गीता 7.19)

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय युवा गंभीर में गीता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है भारत के आधुनिक संतो ने तो गीता के योग का प्रचार विश्व भर में किया है गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण योग को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं अनुकूलता- प्रतिकूलता ,रिद्धि और सिद्धि, सफलता और सफलता, जय- पराजय इन समस्त भावों में आत्मरथ रहते हुए सम रहने को योग कहते हैं। गीता के पंचम अध्याय में सन्यास योग एवं कर्म योग को श्रेष्ठ माना है गीता में ध्यान दें योग एवं कर्म योग के बारे में विस्तृत विवेचन है ।निर्विकार भाव दृष्टा बनकर अंत की दिव्य प्रेरणा से प्रेरित होकर कुशलता पूर्वक कर्म करना गीता में योग ही माना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भगवत गीता
2. महात्मा गाँधी, “अनासक्ति योग (श्रीमद्भागवत गीता)”, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद
3. कुमार , विनोद “गीता में आत्म प्रबंध”
4 . मूर्ति,कृष्ण कृपा(2005) “योग की पूर्णता ” ,भक्ति वेदांत बुक ट्रस्ट ,
5. वर्मा , बी.एम.(2005) “भगवद-गीता दर्शन का कर्म सिद्धान्त” ,राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली

6 . दुबे ,रानी (2011), " प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री " प्रथम संस्करण क्वालिटी पब्लिसिंग कंपनी (भोपाल)

7. लाल,नन्द (2014) " ईश्वर प्राप्ति की श्रेष्ट साधना गीता में सम्पूर्ण योग " रणधीर प्रकाशन हरिद्वार

8. ओबराय , हरवंश लाल (2015) " गीता में ज्ञान योग " प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केंद्र.

9 . सिन्हा , हरेन्द्र प्रसाद , (2018) " भारतीय दर्शन की रुपरेखा " मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड

10 . पाठक , रमेश प्रसाद (2019) "भगवद गीता का शिक्षा दर्शन " ज्ञान भारती पब्लिकेशन

11. घटाटे , कृष्ण माधव (2020) " योग" , कवि कुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक तथा न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन,नई दिल्ली